अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

जुलाई, २०१२

God among stars waits for man
to light his lamps.

Rabindranath Tagore

19 Aug. 1937

सीखने की तन्मयता : कोई इनसे भी कुछ सीखे !

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम्गमय।

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ३७ अंक : ७
जुलाई,२०१२
आषाढ़-श्रावण वि.सं. २०६९

☐
सम्पादक
रमेश थानवी

☐
प्रबन्ध संपादक
प्रेम गुप्ता

☐
प्रकाशन संपादक
दिलीप शर्मा

☐
- एक प्रति पन्द्रह रुपए
- वार्षिक सहयोग राशि एक सौ पचास रुपए
- संस्थाओं के लिए दो सौ पचास रुपए
- व्यक्तिगत सदस्यों के तीन वर्ष का चार सौ रुपए
- संस्थाओं के लिए तीन वर्ष का छः सौ रुपए
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि पन्द्रह सौ रुपए

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र
जयपुर-३०२ ००४
फोन -२७०७६९८, २७००५५९
फैक्स - ०१४१-२७०७४६४
ई मेल - raeajaipur@indiatimes.com
thanviramesh@gmail.com
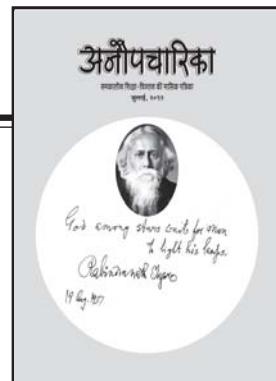
क्रम
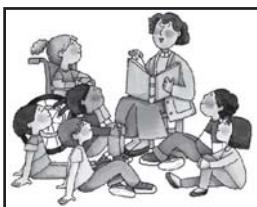
पाठक अब इंटरनेट पर अनौपचारिका नीचे लिखे लिंक पर ऑन लाइन पढ़ सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/july-2012

अनौपचारिका के पिछले अंक भी आप नीचे लिखे लिंक पर देख सकते हैं -

http://speakerdeck.com/u/anoupcharika/p/june-2012

जयपुर से देवर्षि कलानाथ शास्त्री

अनौपचारिका का मैं नियमित पाठक हूं, संग्रहकर्ता हूं और इस तथ्य का साक्षी भी कि प्रत्येक अंक में आप कोई चिरस्मरणीय सामग्री अवश्य देते हैं। इस बार की आपकी 'अपनी बात' कार्टून जगत् के भीष्म पितामह शंकर की अनछुई गरिमा को बड़े मासूम और जानकारी से भरे अंदाज में परोसती है ; बिना उस घटना का जिक्र किये कि किस प्रकार अधकचरे राजनेताओं के विरोध ने एन.सी.आर.टी. की सुविचारित पाठ्यपुस्तक शृंखला में से कार्टून हटाने की जड़तापूर्ण घोषणा करवा दी। हमारे बड़बोले और डेढ़ सयाने शिक्षामंत्री सिब्बलबाबू की कारस्तानी से तो सभी परिचित हैं किन्तु बिना उसके संदर्भ के शंकर पर दी जानकारी और इस घटना पर आपकी प्रतिक्रिया हृदय को छू गई। मैंने इस घटना पर ३०-४० प्रतिष्ठित पत्रिकाओं की प्रतिक्रिया पढ़ी है। आपकी प्रतिक्रिया से सर्वाधिक आलोक मिला। मैं शंकर्स वीकली का नियमित पाठक रहा था।

इस अंक में अदम गोंडवी की सहज और दिलकश शायरी का यथार्थ तो गहरा प्रभाव छोड़ता ही है, उनका परिचय जिस प्रकार दिया गया है वह भी भावुक कर देता है । डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र कोलकाता में रहकर जो साहित्य साधना कर रहे हैं उसकी पृष्ठभूमि के परिचय के साथ उनका 'न मधेया' उद्धृत कर आपने पाठकों को एक दूसरे ही लोक में पहुंचा दिया जहां सदियों के अध्यात्म का आलोक है, आज की चकाचौंध नहीं जो वस्तुत: घोर अंधकार है। आपने इनके ग्रंथ 'कल्पतरु की उत्सव लीला' का उल्लेख किया है, इनके अभिनन्दन ग्रंथ 'गांव की कलम' और इनके एक अन्य ग्रंथ 'भारत
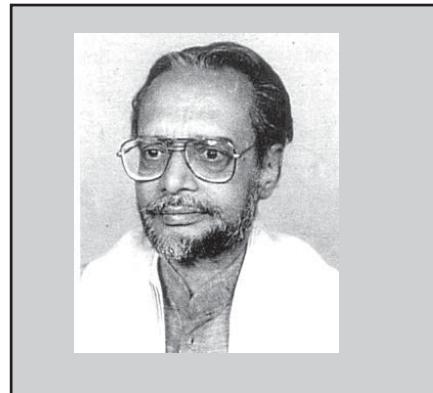
की जातीय पहचान : सनातन मूल्य' का नहीं, पर नवीनतम ग्रंथ की जानकारी पा कर आनन्द आ गया। मैं भी इनके प्रशंसकों में हूं। ❑

सी/८, पृथ्वीराज रोड, सी-स्कीम,
जयपुर-३०२००१

अलवर से डॉ. श्रीराम मल्होत्रा

अनौपचारिका का मई अंक यहां यथा समय प्राप्त हो गया था। आपके संपादकीय और अंक के अन्दर लगभग आठ पृष्ठ के मैडम आशा अय्यर द्वारा लिखित विवेचन ने इस अंक को अभिभावक समर्पित अंक बना दिया है।

बच्चों की शिक्षा दीक्षा में अभिभावकों का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, इस विषय पर शिक्षा शास्त्र की किताबों में बहुत विस्तार से लिखा गया है। यह एक स्थापित सनातन सत्य है कि बालक की शिक्षा में संबंधित अभिभावक जितनी सक्रिय एवं मनोविज्ञान आधारित भूमिका निभायेंगे बालक की शिक्षा उतनी ही कष्ट-मुक्त एवं फलदायी होगी।

प्रस्तुत अंक में शिक्षा क्षेत्र से अभिभावक का पलायन या दूसरे शब्दों में बच्चों की शिक्षा को सही दिशा देने में अभिभावकों की अहम भूमिका को गहरे से रेखांकित किया गया है।

मैडम अय्यर ने जहां अपने विस्तृत विवेचन में बच्चों के लालन-पालन, पढ़ाई-लिखाई एवं व्यवहार कौशल को मनोवैज्ञानिक धरातल प्रदान करने की सफल कोशिश की है वहीं आपने अपने संपादकीय में अभिभावक शिक्षण हेतु विशिष्ट विद्यालय खोलने की वकालत के साथ इस विषय से संबंधित प्रकाशित कतिपय पुस्तकों की चर्चा भी की है। अभिभावक शिक्षण हेतु आपके द्वारा की

गयीं संस्तुतियां सार्थक होते हुए भी इनके लागू होने में संदेह हैं। ऐसा कहीं संपादकीय में भी ध्वनित है।

मेरा मानना है कि अभिभावक शिक्षण का कार्य महत्त्वपूर्ण होते हुए भी, इस हेतु स्थापित औपचारिक विद्यालयों द्वारा किया गया जाना संभव नहीं है। यह कार्य तो सभी विद्यालयों को ही करना चाहिये।

अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान 'विद्या भारती' (जिसके द्वारा सम्पूर्ण भारत में करीब २८००० विद्यालय संचालित हैं) अपने द्वारा संचालित विद्यालयों में ऐसा कुछ कर भी रहा है। इस संस्थान का मानना है कि अभिभावक शिक्षण का काम भी विद्यालयों के कार्यक्षेत्र में होना चाहिये। विद्या भारती में यह कार्य निम्नांकित विधियों द्वारा संपन्न किया जाता है -

अभिभावक सम्मेलन – विद्यालय में अभिभावकों को सत्र में एक या एक से अधिक बार सामूहिक रूप से अथवा वर्ग वार बुला कर बालक/बालिका की शिक्षा पर क्रियात्मक चर्चा आयोजित की जाती है। अपने बालक/बालिका की शिक्षा को मजबूत आधार देने में एक अभिभावक क्या कुछ कर सकता है, इस पर अभिभावकों का ज्ञानवर्धन किया जाता है।

मातृ सम्मेलन– शिक्षा सत्र में एक या दो बार विद्यालय में अध्ययनरत बालक/बालिकाओं की माताओं के सम्मेलन भी आयोजित किये जाते हैं। इस सम्मेलन में माताओं को ही बुलाया जाता है। संस्थान की मान्यता है कि बालक/बालिका की प्रथम गुरु माता होने के कारण एक अभिभावक के रूप में माता का स्थान महत्त्वपूर्ण है और उसे शिक्षित किया जाना ज्यादा जरूरी है। इन मातृ सम्मेलनों में एक अभिभावक के नाते महिलाओं की क्या भूमिका हो सकती है, इस पर विशद चर्चा होती है।

अभिभावक सम्पर्क – विद्या भारती से सम्बद्ध विद्यालयों का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम अभिभावक सम्पर्क भी है। इसके अन्तर्गत विद्यालय में कार्यरत अध्यापक क्रमानुसार अपने विद्यालय में अध्ययनरत बालक/बालिकाओं के घर जाकर अभिभावकों से सम्पर्क करते हैं जिसमें विद्यार्थी के शैक्षणिक समुन्नयन के अलावा अभिभावक दायित्वों पर भी खुल कर चर्चा होती है।

ऊपर कुछ ऐसे कार्यक्रमों की चर्चा की गई है जिनका सफलतापूर्वक संचालन कर अभिभावक शिक्षण का कार्य वर्तमान में कतिपय विद्यालयों में किया जा रहा है। ऐसे अनेक कार्यक्रमों की रचना कर अभिभावक शिक्षण का काम सभी विद्यालयों को करना चाहिये, ऐसी मेरी मान्यता है। अभिभावक प्रशिक्षण हेतु औपचारिक शिक्षण विद्यालय खोला जाना कुछ अव्यवहारिक प्रतीत होता है।

नाथद्वारा से सदाशिव श्रोत्रिय

अनौपचारिका का जून अंक मिला तो लगा कि आपने वह काम किया जो किसी अन्य व्यक्ति ने इतनी अच्छी तरह से नहीं किया था। बाबा साहब के कार्टून संबंधी तथ्यों को आपने अपने संपादकीय तथा कवर के तीसरे पृष्ठ का उपयोग करते हुए जिस तरह पूरा खोल कर पाठकों के सामने रखा उस तरह शायद किसी ने नहीं रखा था। जो लोग जनतंत्र के स्वास्थ्य के लिए लोगों को सही अर्थों में शिक्षित करना चाहते हैं वे प्रतिबद्ध लोग ही आजकल पत्रकारिता में इतना श्रम करते हैं। वरना हिन्दी अखबारों का हाल तो यह है कि झगड़े की चर्चा अवश्य करेंगे पर यह बताने का कष्ट नहीं उठायेंगे कि झगड़ा किस बात पर हुआ है। लोग स्वतंत्र रूप से किसी मसले पर सोच-विचार सकें यह उद्देश्य न तो हमारी शिक्षा व्यवस्था ने अपने सामने रखा है और न ही मोटे तौर पर हमारी वर्तमान पत्रकारिता ने। तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर हर व्यक्ति जैसे-तैसे मतदाता को अपने पक्ष में करने को आतुर है। ऐसे में सच्चा जनतंत्र कैसे पनप सकता है ?
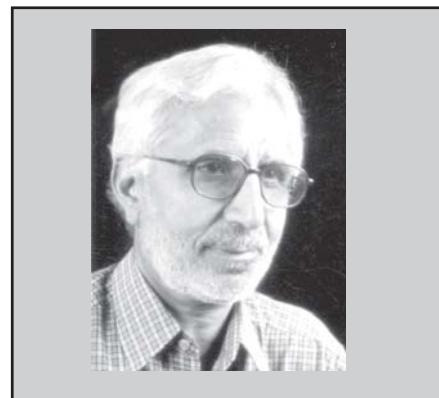
अदम गोंडवी की चर्चा और उनके काव्य को इस अंक में स्थान देकर भी आपने एक जरूरी काम किया है। उनके कहने में कुछ ऐसी खासियत थी कि श्रोता के दिल पर उनकी बात सीधा असर करती थी। अफसोस इस बात का है कि शराब ने उन्हें हमसे छीन लिया। ❑

३८, नयी हवेली,
नाथद्वारा-३१३३०१

शिक्षा नहीं कोई कारोबार
यह है जनता का अधिकार
❑
सबको शिक्षा एक समान
मांग रहा है हिन्दुस्तान

शिक्षामंत्रियों की
शिक्षा कौन करे ?

यह एक रोचक विषय है। इससे भी अधिक रोचक विषय यह है कि हमारे देश के सभी प्रदेशों के शिक्षामंत्री रोज क्या पढ़ते हैं और सीखने के लिये कितने तत्पर रहते हैं। यह एक सामान्य बात है कि जो स्वयं शिक्षामंत्री है उसके लिये रोज सीखना तो उतना ही आवश्यक है जितना प्रतिदिन दोनों वक्त का भोजन करना।

इस विषय के अध्ययन से पहले गवेषणा का पहला विषय यह होगा कि हमारे देश के सभी प्रदेशों के शिक्षामंत्री कौन-कौन सी शालाओं में पढ़े हैं। प्रश्न केवल शालागत पढ़ाई का ही नहीं है, डिग्री हासिल करने का ही नहीं है उससे भी पहले वे कैसे घरों में जन्मे हैं, किस समाज में खेले और बड़े हुए हैं ? उनका बचपन किस प्रकार अनन्त प्यार और स्नेह से सींचा गया है ? उनको अपने बचपन में खेलने के लिये कितने बड़े और खुले मैदान मिले हैं। उन्होंने अपने बचपन में खुला आकाश देखने, पहाड़ों पर चढ़ने, समुद्र के सुदीर्घ विस्तार को देखने और कुदरत के करीब रहकर सच्चा पाठ पढ़ने के कितने अवसर पाये हैं ?

इतना ही नहीं जरूरत तो इस बात की भी है कि उन्होंने अपने बचपन में कितनी गरीबी देखी है ? और यदि गरीबी स्वयं अपने परिवार में नहीं देखी है तो उन्होंने गरीब को देखने और दीन दुखियों की सेवा करने के कितने सीधे अवसर पाये हैं ? क्या देश के किसी एक भी शिक्षा मंत्री ने किसी कोढ़ी के घावों पर मरहम लगाया है ? किसी ऐसे बच्चे को दूध पिलाया है जिसको दूध का स्वाद पता नहीं है। क्या कभी किसी शिक्षामंत्री ने किसी विकलांग बालक को गोद लेकर उसे बड़ा करने का सुख पाया है ? इन सब सवालों की अपनी एक प्रासंगिकता है और इनके अपने कुछ ऐतिहासिक संदर्भ भी हैं। जब हम किसी कोढ़ी की सेवा की बात करते हैं तो हमें गांधीजी की याद आती है और साथ ही बाबा आम्टे की याद भी आती है। उन संदर्भों को याद करते हुए हम आश्वस्त होते हैं कि समाज से जुड़े बिना और जरूरतमंद लोगों की सेवा किये बिना किसी भी व्यक्ति की सच्ची शिक्षा हो ही नहीं सकती।

समाज सेवा के अवसरों के अलावा सीखने का जो दूसरा स्रोत है वह है भारतीय चिंतकों, शिक्षाविदों एवं संत महात्माओं अथवा ऋषि-मुनियों की चिंतनधारा में अवगाहन करना। देखना हमें यह है कि हमारे किस शिक्षामंत्री ने गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर और महात्मा गांधी को कितना करीब से जाना है और उनके विचारों और दर्शन से क्या सीखा है ? जानना यह भी जरूरी है कि उन्होंने महर्षि अरविन्द, महर्षि रमण और भारत के महान ऋषि परमहंस रामकृष्ण से क्या कुछ सीखा है ? इस देश में जिन लोगों ने शिक्षा का काम किया उनमें गिजुभाई बधेका भी एक थे, ताराबेन मोडक भी एक थीं और अनुताई वाघ भी एक थीं। जानना होगा कि हमारे देश या प्रदेश का कौन शिक्षामंत्री इन शिक्षाविदों को करीब से जानता है और इनकी राय को अंगीकार करते हुए इनकी बात को मानता है ? पूछना यह भी पड़ेगा कि किस शिक्षामंत्री ने विनोबा को भी करीब से जाना और समझा है ? विनोबा के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे बीती हुई शताब्दी के अंतिम ऋषि थे। उनकी पुस्तक **शिक्षा दर्शन** हर शिक्षामंत्री के लिए एक अनिवार्य पुस्तक है ।

जानना यह भी जरूरी है कि हमारे किस शिक्षामंत्री को भारतीय वाङ्मय की कितनी समझ है और हमारी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा की कितनी पहचान है ? भारत के पहले प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने जेल में रहकर इस देश के इतिहास और इसकी सांस्कृतिक परम्परा का गहन अध्ययन किया था। ऐसा अध्ययन करते हुए उन्होंने अपने लिए इस देश को पुन: अन्वेषित किया था। तभी वे **डिस्कवरी ऑफ इंडिया** जैसी किताब लिख सके थे। इतना ही नहीं जब **दिनकर जी** ने **संस्कृति के चार अध्याय** जैसा ग्रंथ लिखा तो उसकी भूमिका **जवाहर लाल नेहरू** ने लिखी थी। वह भूमिका आज भी हर मंत्री के लिए एक पठनीय सामग्री है।

जरूरत तो इस बात की भी है कि हमारे देश के शिक्षामंत्री दुनिया के सारे क्रांतिकारी शिक्षाविदों को पढ़ें ह्न मकारेंको, सुखोम्लीन्सकी, पियाजे, जॉन हॉल्ट, पाउलो फ्रेरे, इवान इलिच, माता मोन्तेस्सोरी, एवर्ट रीमर, पॉल गुडमैन, जानूस कोर्चाक और एक छोटे से अफ्रीकी देश गिनीबिसाऊ के पहले प्रधानमंत्री **अमिलकर कबराल** आदि कई नाम हैं जिनके लेखन में झांक लेने तक से एक तीर्थ यात्रा जैसा लाभ मिल सकता है। मगर सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि शिक्षामंत्रियों की शिक्षा कौन करे ? और उससे भी पहले उनकी शिक्षा का लेखा-झोखा कौन ले ? ये सारी बात मैं इस संदर्भ में लिख रहा हूं कि एक समाजवादी सरकार का शिक्षामंत्री बच्चों को मारने से और सजा देने से शिक्षा का सीधा रिश्ता जोड़ता है। उनका कहना है कि बिना सजा के सच्ची शिक्षा हो ही नहीं सकती। हमारी प्रार्थना है कि उनको कोई शीघ्र ही सन्मति दे और सद्बुद्धि दे। ❑

रमेश थानवी
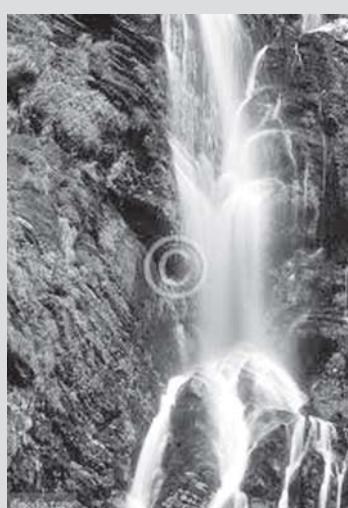
मां और शांति निकेतन

❑

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

श्रीमती पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा की शिक्षा में गहरी रुचि है । इस रुचि की पृष्ठभूमि कितनी लम्बी है इसे तो पाठक प्रस्तुत लेख पढ़ कर ही समझ सकते हैं। पहले तो मां ने अपने बचपन में शांति निकेतन में शिक्षा पायी और फिर विवाह होने के पश्चात पूर्वाजी के माता-पिता दोनों माता मॉन्तेस्सोरी के पहले विद्यार्थी रहे। दोनों ने मॉन्तेस्सोरी के शिक्षा सिद्धान्तों को ठीक से अंगीकार किया और फिर कलकत्ते में उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित एक छोटे से विद्यालय की स्थापना की। वह विद्यालय फलता-फूलता रहा मगर समय बीतने के साथ पूर्वाजी की मां जयपुर चली आईं और जयपुर आकर राजस्थान विद्यालय की प्राचार्य बनीं। घर में हर दिन शिक्षा पर ही चर्चा होती रहती, इसी पृष्ठभूमि में पूर्वाजी की शिक्षा में रुचि निरन्तर बढ़ती रही। उन्होंने शिक्षा की कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद किया है। आज भी अनुवाद के काम में जुटी रहती हैं। अपनी मां के स्कूली दिनों की एक आत्मीय तस्वीर उकेरते हुए पूर्वाजी का एक मार्मिक लेख प्रस्तुत है। ❑ सं.

वह श्वेत-श्याम छाया-चित्र सरसरी नजर डालने पर अति-साधारण लग सकता है ; पर हमारे परिवार के लिये बेहद दुर्लभ व मूल्यवान है। कल ही की बात है कि उसे जहां रखा है वह भूल, उसे खोजने की कोशिश में लगभग पगला ही गयी। पर तब **नूपुर** ने याद दिलाया कि वह एक एल्बम में चिपका दिया गया है। उस खजाने को फिर से पा कर आश्वस्ति की, गहरी सांस ली।

चित्र की पृष्ठभूमि में एक भवन है, छोटा-सा। उसके ठीक सामने दस पुरुष खड़े हैं, उम्र का अंदाज लगाना कठिन। उस कतार के ठीक सामने बीचों-बीच रखी कुर्सी पर **गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर** विराजमान हैं। उनके सामने, लगभग उनके चरणों में ही समझें, **हजारी प्रसाद द्विवेदी** हैं, और उनके दोनों ओर पांच-पांच बालिकाएं । इन साड़ी धारी किशोर आकृतियों के लिये बालिकाएं शब्द का प्रयोग इसलिए किया कि उनमें से एक **मां, ब्रजेश कुमारी लालजी** या विवाहोपरान्त **ब्रजेश कुमारी याज्ञिक,** भी हैं। **मां** का जन्म शायद १९२२ में हुआ था, और यह चित्र सम्भवत: नवम्बर १९३९ में किसी **रमन दा** द्वारा खींचा गया होगा। अर्थात् इस चित्र में **मां** की आयु १६ या १७ वर्ष की ही है।

पृष्ठभूमि में नजर आने वाला भवन-कला भवन, संगीत भवन, या कोई और भी हो सकता है। ठीक-ठीक जानने का कोई उपाय नहीं है। **गुरुदेव, द्विवेदी जी** और **मां** के अलावा उस चित्र में शायद **सुमित्रानंदन पंत** की **भांजी सोमा** भी हैं और अगर वे ही **'शिवानी'** की बहन नहीं हैं, तो मेरी जानकारी में पांचवीं आकृति लेखिका **शिवानी** की बहन की है। पर मेरे लिये अब नामों और चेहरों को पक्के भरोसे के साथ जोड़ना कठिन है।

बहरहाल, अर्से तक **मां** को शांति निकेतन से जोड़ने वाली चीजों के ठोस प्रतीकों

में एक यह छाया-चित्र था, और दूसरी चीज थी चमड़े की जिल्द वाली एक ऑटोग्राफ - बुक जिसमें **गुरुदेव, नंदलाल बासु** इत्यादि के हस्ताक्षर हैं। बेशक हमारे जेहन में **मां** की सुनाई इक्की-दुक्की कहानियां भी थीं, जो शांति निकेतन के अनुभव को बखानती थीं। **मां** की मृत्यु के एक अर्से बाद मौसी, **मिथिलेश मुखर्जी** ने जब अपना आत्म-कथ्य लिखना प्रारंभ किया तो उन्होंने अपने बरसों से सहेजे रखे कागजों में से वे पत्र निकाल कर मुझे सौंप दिये जो शांति निकेतन से **मां** ने उन्हें और बड़ी मौसी को लिखे थे।

उन पत्रों को पढ़ एकाएक विश्वास नहीं होता कि वे एक १६-१७ बरस की किशोरी द्वारा लिखे गये हैं। पर शायद यह कहना भी पूरी तरह से ठीक भी नहीं क्योंकि कुछ पत्र, या कुछ पत्रों के कुछ हिस्से, बेशक यह आभास देते हैं कि उन्हें लिखने वाली किशोरी रूठ गयी है, बिदक गयी है या किसी से अकारण-सकारण बेहद-बेहद नाराज है।

यह सच है कि शांति निकेतन की **मां** से सुनी मौखिक कथाओं में अधिकांश विस्मृत हो चुकी हैं। कम से कम मेरे सठिया चुके स्मृति-पटल से पुछ चुकी हैं। सिवा **मां** की दी इस जानकारी के कि किसी भी गीत-गीति नाट्य इत्यादि के प्रदर्शन के ऐन पर्दा खुलने के पहले भी अगर **ठाकुर मोशाय** को लहर चढ़ आती तो वे गीत के सुर-लय-ताल में जगह, जगह तब्दीली कर देते। जाहिर है कि तब इतना समय भी नहीं होता कि गायक या नर्तक मंडली (जिसमें **मां** भी हुआ करती थीं) मूल धुन और साथ में जोड़े गये सभी बदलावों का एक साथ एक रिहर्सल तक कर सकें। और फिर **गुरुदेव** की रचना की मूल प्रस्तुति की गुंजाइश थी ही नहीं तो छात्र-छात्राएं कैसे तनाव से गुजरते होंगे इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

मां के शांति निकेतन से लिखे पत्र उनके लैटर हैड पर हैं। बाईं ओर रोमन अक्षरों में **मिस ब्रजेश कुमारी लालजी** और दाहिनी ओर 'श्री भवन', पो.ओ. शांति निकेतन, बंगाल, लिखा है। श्री भवन संभवत: महिला छात्रावास भवन का ही नाम लगता है।

सभी पत्रों की लिखाई एकसार नहीं है। कहीं ठहर कर धीरज से अक्षर साध कर लिखने की चेष्टा झलकती है तो कहीं हड़बड़ी में घसीटा-मार लिखाई भी है। बहरहाल मौसियों को संबोधित पत्रों में एकाध १५, कचहरी रोड, इलाहाबाद से, तो एकाध साधना, सिविल लाइन्स, अजमेर से और एकाध बाद में बीड़न स्क्वैयर, कलकत्ता से भी लिखे गये हैं।

४ जनवरी, १९३७ को अपनी दोनों बहनों को अजमेर से लिखे पत्रों में इलाहाबाद से अजमेर अपने पिता के पास चले आने का जिक्र जरूर है पर निकट भविष्य में शांति

निकेतन जाने की न चर्चा है, न ही ऐसी किसी योजना का कोई सुराग ही। और तब अचानक तकरीबन छह माह बाद १४ जुलाई, १९३७ को लिखा पत्र श्री भवन, पो.ओ. शांति निकेतन, से भेजा गया है।

पत्र के मजमून से कयास यह लगता है कि मां को शांति निकेतन आये कुछ समय हो चुका है, क्योंकि 'प्रिय मित्थल' को संबोधित यह पत्र 'तुम्हारा लम्बा पत्र मिला था' से शुरू होता है। जाहिर है कि कम से कम एक पत्र तो शांति निकेतन से **मित्थल मौसी** को मिला होगा और उन्होंने उसका उत्तर भी भेजा होगा।

बहरहाल फुर्सत से लिखा गया यह खत शांति निकेतन के सुंदर वातावरण का वहां विभिन्न प्रांतों से आये सभी तरह के छात्र-छात्राओं का, वहां के पुरुष छात्रों की शिष्टता आदि की सूचना देता है। और तब मां **'ब्रजेश'** क्या सीख-पढ़ रही हैं उसकी समग्र, नहीं पर कुछ बिखरी जानकारी देता है।

इसमें **मां** शांति निकेतन की प्रात:कालीन प्रार्थना वैतालिक का वर्णन इन शब्दों में करती हैं -

'सुबह साढ़े छह बजे वैतालिक होता है-अर्थात् लड़के और लड़कियां साथ खड़े होते हैं । दस मिनट तक घंटा बजता है। उसकी लहरियां कुछ तेज और फिर धीमी होकर शून्य में मिल जाती हैं। एक सन्नाटा रहता है-खाली घंटा १---/१-२-३/१---/१-२-३ बजता रहता है। इसके बाद कुछ श्लोक कहते हैं-और खत्म होने पर सबके मस्तक झुक जाते हैं। फिर एक बंगाली गाना-जो रोज नये-नये गाये जाते हैं-होता है। पतली और मोटी आवाजों का अजीब संमिश्रण होता है-साथ में बजता है इसराज। इसके बाद सब धीरे-धीरे अपनी क्लासों के लिये जाते हैं।'

संध्या रुटीन के बारे में **मां** लिखती हैं, 'शाम को गेम्स के बाद हमारे यहां

'उपासना' होती है। जिसमें पांच मिनट तक हम लोग सब चुप रहते हैं। फिर श्लोक पाठ होता है। इसके बाद हम लोगों को बाहर जाने की इजाजत नहीं है।'

अपनी सहपाठिनों-सहपाठियों के लिये मां लिखती हैं :

'यहां सभी तरह की लड़कियां हैं। सिन्धी, पंजाबी, मुसलमान, क्रिश्चियन-मद्रासी, बंगाली।... यहां के लड़के बहुत ही अच्छे हैं, कोई तंग नहीं करता। सब सिर झुका कर चलते हैं और हम लोगों के लिये रास्ता कर देते हैं। यहां सब धोती-कुर्त्ता पहनते हैं और छोटे से लेकर बड़े तक नंगे पांव चलते हैं। लड़कियां भी नंगे पांव चलती हैं। मैं भी कभी-कभी जाती हूं-पर मेरी आदत नहीं।'

मां मैस के खाने से, कुछ ऊबने लगी हैं, जो आज के हिसाब से मुझे तो 'राजसी' प्रतीत होता, यह संकेत वे अपनी दीदी को देती हैं :

'यहां का खाना अच्छा है मगर घी नहीं मिलता। रसेदार तरकारी भी तेल में ही होती है। जी ऊब गया है। वैसे तरकारी तीन से कम नहीं मिलती -कभी चार भी मिलती हैं। दही चाहो तो दही, या दूध चाहो तो दूध मिलता है। दो मील्स और तीन लाइट मील्स होते हैं। नौ बजे के करीब-रीसेस में दही की लस्सी या शर्बत मिलता है। सबेरे टोस्ट, मक्खन, कोई मिठाई, कभी कचौड़ी, कभी लूची-तरकारी और तरह-तरह की चीजों में से एक चीज और दूध मिलता है। इंतजाम अच्छा है। **सरोजिनी दी** खाने की इंजार्च हैं, मुझे बड़ा प्यार करती हैं।'

अपने इस पहले पत्र में वे सामान्य कक्षाओं की बात कर, खुद जिन कक्षाओं में जाती हैं, उसका कुछ जिक्र करती हैं। वैतालिक के बाद ही प्रात:कालीन कक्षाएं प्रारंभ हो जाती हैं, यह स्पष्ट करने के बाद वे लिखती हैं:

'क्लासें पेड़ों के नीचे होती हैं... पानी बरसने पर सब अपनी किताबें और आसन उठा कर भागते हैं...।

मगर हम लोगों की क्लासें कमरों में होती हैं (संगीत तथा कला की)। साढ़े दस तक क्लासें होती हैं बाद में खाना खाते हैं। खाना सब जल्दी खा लेते हैं। खाना लड़का-लड़की साथ खाते हैं-खाली बैंचें अलग-अलग रहती हैं।'

अपनी कक्षाओं के विषय में उनकी टिप्पणी हैं-

'मुझे सब कुछ पसंद है, पर पेंटिंग का मामला कुछ गड़बड़ है-ये लोग 'पेस्टल ड्राइंग' पर जोर देते हैं मुझे आता नहीं। 'चारकोल ड्राइंग' भी सड़ी लगती है। बच्चों की तरह डिजाइन बनवाते हैं-और बाद में 'वॉटर पेंटिंग' सिखाते हैं। 'आइल पेंटिंग' का इंतजाम नहीं है, और पेन्टर साहब **(नन्दलाल बोस)** शायद जापान गये हैं। बड़ी आफत है। **गौरी दी** (नन्दलाल बोस

की लड़की) मुझसे नाराज भी है।

यहां सब टीचर्स को, जो यंग हैं-लास्ट में 'दा' कहते हैं-जिसका अर्थ है भाई। औरत टीचर्स को 'दी' कहते हैं-जिसका अर्थ बहिन से है। **नन्दलाल बोस** को **'माश्टर मोशाय'** कहते हैं। उनसे मिली हूं। बहुत बूढ़े नहीं है, जैसा सुना था। उनकी लड़की **गौरी दी** की शादी हो गयी है।'

संगीत और नृत्य की कक्षाओं के बारे में इस पत्र में **मां** ने लिखा है कि -'मैं यहां हिन्दी और बांग्ला म्यूजिक दोनों सीखती हूं। नाम अभी ठीक से नहीं मालूम फिर लिखूंगी। क्लासेस अभी ठीक से शुरू नहीं हुई हैं-१५ से होंगी। डांस सिखाने वाले अभी नहीं आये, इसराज वाले भी कल ही आये हैं-अभी उनसे मिली नहीं।'

२८ जुलाई, ३७ को लिखे अपने अगले खत में वे अपने संगीत शिक्षकों का नाम गिनाती हैं-

'सितार के मास्टर **श्री सुशील कुमार भंज**। बंगाली गाने के मास्टर **श्री शांति देब घोष**। हिन्दी गाने और इसराज मास्टर **आशिष बैनर्जी**। यह (**आशिष बैनर्जी**) एक १८ साल का लड़का है। गजब का सितार-इसराज बजाता है और हम लोगों को सिखाता है। हिन्दी म्यूजिक ज्यादा अच्छा नहीं है।'

शांति निकेतन का सामान्य जीवन औदार्य और सौहार्द का, छात्र-छात्राओं के बीच शिष्ट व संयमित स्नेह, हंसी-ठिठोली और सौम्य सामूहिक गतिविधियों का था ऐसा इस प्रथम पत्र के इस वर्णन से लगता है:

'कल की रात स्मरणीय थी और ऐसा कभी माह में दो या एक बार होता है।

नौ बजे रात के करीब हम लोग इकट्ठे हुए-एक तरफ लड़कियां खड़ी हुईं। हम लोगों ने एक बंगाली गाना सीखा था। उसी को हम लोगों ने गाया-की पाइनी तारे ही... (अस्पष्ट शब्द) मिलाते, मॉनो मोर नाहीं राजी। मोटी और पतली आवाज, एक साथ कांपती एक साथ रुकती-फिर एक साथ धीमी होकर चढ़ जाती। इसके बाद गाते-गाते हम लोगों ने चलना शुरू कर दिया। हम लोग गाते हुए चले जा रहे थे, जैसे अनंत मंजिलें, गाकर तै कर डालेंगे।

मुस्कुराते हुए हम लोग देखते-गाते-टक्कर खाते-कुछ इधर-उधर होते हुए, गाये जा रहे थे-'की पाइनी तारे ही...'। हृदय उमंग से भरा पड़ा था-गाते जाते थे, कभी मुड़ते थे-फिर बढ़ जाते थे-जैसे पागल हों। मगर सबके दिल साफ थे। विश्वभारती रात में गूंज रही थी। ठीक दस बजे हम लोग रुके। दस मिनट तक रुक कर गाया। फिर हम लोग लौट पड़े-एक बार हंसी से सारा वातावरण गूंज पड़ा। फिर सब सो गये। लाइट बुझ गयी। मैं बैठी रही। दूर तक खिड़की से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। खाली बदरी-हरे पेड़ बिल्कुल काले और बड़े-बड़े। और छोटा सा चांद कभी दिखता, कभी छिप जाता। तब भी मेरे कानों में गूंज रहा था 'की पाइनी...! यदि यह कहीं रोज हो-यदि कहीं इसी तरह से मैं गाते-गाते मर जाऊं। ओह! कितना सुख?'

२८ जुलाई, ३७ को लिखे पत्र में मां, अपनी बहन **मित्थल** को कक्षा से इतर गतिविधियों और अनुभवों के बारे में बताती है :

'यहां एक 'साहित्यिक सम्मेलिनी' है-जिसकी मेम्बर मैं जबरदस्ती पकड़-धकड़ कर बना दी गयी हूं। एक लड़का (सम्मेलिनी का मंत्री) मेरे पास आया-उसने सुन रखा था कि मैं कहानी लिखती हूं, बड़ा तंग करने लगा। आप आइए-देखिए और आपको इन्टरेस्ट लेना चाहिये -आप लोग न लेंगे तो कौन लेगा। आदि। खैर भई गये तो बड़ा मजा आया।

यहां एक छोटे पंडितजी हैं, वे विलायत जाने वाले हैं। उनकी फेयरवेल पार्टी की बात थी। एक लड़के ने-जो बड़ा शैतान है-अपनी सम्मति जाहिर की 'पंडितजी दो रुपये हुए छोटे लड़कों की सम्मेलिनी के और दो रुपये हुए बड़े लड़कों के सम्मेलिनी के-चार। और दो रुपये आप लगा लीजिये ऊपर से कुछ...। छह ही रुपये की तो बात है-दे न डालिये एक पार्टी।'

बेचारे पंडितजी फक्क-कहां तो बात थी पार्टी मिलने की और कहां पार्टी पड़ी अपने सिर। लगे बगलें झांकने। हम लोगों को दया आयी।

तो मैंने कहा 'ऐसा नहीं कहिये, अगर पांच-छह रुपये की बात है तो एक पार्टी हम लोगों की ओर से सही।' शैतान लड़के की तो बांछें खिल उठीं। बोला, 'वाह। इससे बढ़ कर बढ़िया बात क्या हो सकती है-बहिनें खिलायें और भाई लोग खायें।' इसके बाद फिर पार्टी की बात चली। अब मैं चकराई, मैंने कहा 'अब पार्टी कैसी?' लोग बोले 'सम्मेलिनी की ओर से।' मैंने कहा-'वाह। आप लोग तो बेचारे पंडितजी के सिर टाले दे रहे थे। ' लोग बोले 'मजाक था।' छूटते ही मैंने कहा, 'मैंने भी मजाक किया था, मैं नहीं देती पार्टी-वार्टी।' इतना मजाक रहा, इतना मजाक रहा, जिसका ठिकाना नहीं, हम लोग खूब हंसे।'

इसी पहले पत्र में मां अपनी व्यस्त दिनचर्या का उल्लेख करते हुए शिकायत करती हैं:

'एक लड़का है श्री जैन-राजपूताने का है। उसने मेरे पास अपनी कहानी समालोचनार्थ भेजी है। समालोचना पढ़ी है। भेजने का मौका-टाइम नहीं है, क्या करूं। सारे वक्त पिसी रहती हूं-अभी सितार का पीरियड तो फिर इसराज का, फिर बंगाली म्यूजिक, फिर हिन्दी म्यूजिक, फिर कला भवन, ड्राइंग का, फिर डांसिंग का। और राम जाने क्या-क्या और पीरियड हैं। थक

जाती हूं। रात में ग्यारह से पहले नहीं सोती। सबेरे चार-साढ़े चार और अगर न नहाओ तो पांच तक उठना पड़ता है। नींद पूरी ही नहीं होती।'

अपने स्वास्थ्य और खासकर अपनी आंखों की दृष्टि को लेकर मां की चिंता का उल्लेख भी एकाध पत्र में मिलता है। एक में शांति निकेतन में हुए 'हैल्थ चैकअप' के संदर्भ में, और दूसरे में 'गेम्स' से छुट्टी पाने की मंशा से । दरअसल **मां** बचपन में भयानक चेचक के शिकंजे में जकड़ी गईं थीं। उन्हीं से सुना था कि उनकी दृष्टि जाते-जाते बची थी। वह भी नानी **श्रीमती रामप्यारी चंद्रिका** की लगन और समझदारी की वजह से। **मां** बताती थीं कि **नानी** उन्हें **'मेरी गरीब बिटिया'** कहती थीं और चेचक के दौरान तमाम सेवाओं के साथ **नानी** तरह-तरह के अंजन बना उनकी आंखों में डालती रही थीं। बहरहाल १४ जुलाई ३७ के पत्र के पुनश्च: में **मां** ने लिखा था।

'मेरा वजन ९२ पाउण्ड है-यहां के डाक्टर ने हैल्थ एक्जाम लिया था। आंखों के खराब होने का कारण उन्होंने स्मॉल पॉक्स बताया। और कहा कि तुम ईश्वर को धन्यवाद दो कि आंखें खराब ही हैं-अंधी नहीं हो गयीं। नहीं तो लोग ऐसी भयानक पॉक्स में अंधे हो जाते हैं। मुझे लगा जैसे एक बोझ उतर गया-क्योंकि अब उन्हें खराब करने का इल्जाम मेरे सर पर नहीं, न मेरी केयरलैसनैस इसके लिये जिम्मेदार है।'

अपने २८ जुलाई, १९३७ को लिखे खत में वे अपनी **मित्थल दीदी** से चिरौरी करती हैं, चाहती हैं कि वे जीजाजी (**श्री राम भारतीय**) से अनुरोध कर कोई ऐसा खत लिखवा दें जिससे उन्हें खेल-कूद में अनिवार्य शिरकत से मुक्ति मिल जाये।

'मैं चाहती हूं कि मैं गेम्स में भाग न

श्रीमती ब्रजेश याज्ञिक : शाला के बच्चों की चिंता में

लिया करूं, मगर वह जरूरी है। आंखों का डर हमेशा बना रहता है। कहीं आंखों में लग-वग न जाये तो आधी अंधी तो हूं-पूरी पर बन आये। घूमने नहीं जाने दिया जाता क्योंकि फिर सभी लड़कियां घूमने जाना चाहेंगी।

मैं चाहती हूं जीजाजी अक्का को लिख दें कि वे मुझे गेम्स के बजाय घूमने जाने दिया करें। मुझे शाम को रोना आता है, जब गेम्स के लिये मुझे फोर्स किया जाता है। ईश्वर जानता है मैं ऐसे उछल कूद के खेल एकदम पसन्द नहीं करती। जीजाजी को यह खत दिखा देना-मुझे विश्वास है वे लिखेंगे।'

मां इस समस्या से निजात पा सकीं या नहीं, उनके जीजाजी ने ऐसा कोई खत लिखा या नहीं पता नहीं। क्योंकि अगले पत्रों में इसका जिक्र नहीं मिलता। परन्तु एक दूसरी ही तरह की टीस की चर्चा वे १२ फरवरी, १९३८ को अपनी **मित्थल दीदी** को संबोधित खत में करती हैं:

'यह मेरा कदाचित पहिला जन्म दिन होगा जब कि मैं तुम लोगों से अलग रहूंगी-इसके पहिले एक बार मैं बनारस में थी। तब शायद मैंने अकेलापन फील नहीं किया था क्योंकि **सावित्री दीदी** वहीं थीं और मैं बन्ने जीजा के घर में थी। तब मुझे कुछ नवीनता ही लगी थी, मगर अब ? सब लोगों से अलग, इस दूर देश में उस बदमाश को याद करूंगी, जिसने एक दिन फूल को कोट की जेब में खोंस कर कहा था-'जन्म दिन का हास।'

यह खत लिखते समय **मां** का मन कुछ उद्विग्न है। संभवत: परिजनों से दूर जन्म दिन बिताने की बाध्यता के कारण या फिर यों ही सामान्यत: कभी-कभार सबको घेर लेने वाली उदासी या खीझ के कारण। बहरहाल वे आगे लिखती हैं-

'कल हम लोगों का स्पोर्ट्स डे' होगा। मगर मैंने किसी में भी भाग नहीं लिया है। संगीत भवन की लड़कियों के लिये अलग-अलग चीजें हैं। कला भवन के लिये अलग। मगर मुझे कुछ भी मतलब नहीं। मैं उन बातों को करने के लिये या तो बहुत ही छोटी हूं, या बहुत ही बड़ी-भगवान जाने।'

इसी पत्र में आगे मां इच्छा प्रकट करती हैं कि काश लिखे गये खत का जवाब उन्हें दूसरे ही दिन मिल जाता। और तब यह:

'कल सुबेरे चार बजे वैतालिक होगा-गाना है 'तुमि किछू दिए जाओ' और मतलब है 'तुम कुछ दे जाओ।' पंक्तियों का सौंदर्य उसकी राग में है। और मेरी इच्छा होती है कि तुम लोगों के पास उड़ कर गा जाऊं-'तुम किछू दिए जाओ।' लगता है अपने जन्म दिन के लिए तुमसे कुछ मांग रही हूं, अच्छा देती नहीं, तो कुछ ले ही जाओ-'तुम किछू निए जाओ।' और तुम कुछ बोलती नहीं हो- तुम चुप ही हो और जैसे मैं अटक पड़ती हूं-'जे बानी नीरबो नौयोने'... (जो भाषा नीरव नयनों में है... वह भाषा मैं पढ़ नहीं पाती।'

पर यह मन:स्थिति निश्चित रूप से स्थायी नहीं है। अपने पहले पत्र में वे एक पिकनिक पर जाने के आमंत्रण का और तब शांति निकेतन परिसर से पांच मील दूर स्थित श्री निकेतन की रोचक यात्रा का वर्णन करती

हैं। पिकनिक जाने का आमंत्रण मां को एक सिख लड़के ने दिया था, जो उन्हें भैणजी कह संबोधित करता था।' शांति निकेतन पहुंचने के बाद **मां** की मुलाकात एक पंजाबी लड़की **हर्ष प्रभा** और उसके भाई से भी हुई थी। उस समय **मां** के अभिभावक बन कर दाखिला करवाने आए उनके जीजाजी भी मौजूद थे। **हर्ष प्रभा** के भाई को मलेरिया हो गया था और वह बेहद घबड़ा गयी थी। जीजाजी की पहल पर **मां** और जीजाजी ने मरीज की देखभाल में कुछ मदद की। जीजाजी के आदेश पर अगले दिन मरीज को बेहतर हाल में देखने भी गईं। तब और न जा सकीं। इसी क्रम में **मां** ने **मौसी** को लिखा:

'परसों हर्ष प्रभा का भाई-जो ठीक हो गया था-आया। मैं बाहर बैठी थी। गेम्स हो रहे थे। एकाएक **'ब्रजेश, ब्रजेश** की आवाज सुन मैं चौंकी। देखा **हर्ष प्रभा** का भाई मुझे पुकार रहा था। उसके साथ वे महाशय भी थे अपनी 'भैण' के 'भाई'। मैंने नमस्कार किया। **हर्ष प्रभा** का इतना बड़ा बी.ए. पास भाई मुझसे ठुनक कर बोला- 'आप आईं नहीं क्यों ?'-आदि। मुझे इतना अजीब लगा कि जिसका ठिकाना नहीं। वे महाशय खड़े मुस्कुरा रहे थे-इसके बाद एकदम मेरे पास आकर उन्होंने कल के लिए पिकनिक के लिए आमंत्रित किया। (साथ में और भी कुछ लड़कियां को) पर अफसोस हम लोगों को परमिशन नहीं मिली। क्योंकि यहां की कर्ता-धर्ता गुरुदेव की पुत्रवधु हैं-वे नहीं थीं। वे हम लोगों को कहीं दूर जाने-आने की इजाजत दे सकती हैं। खैर...।'

पर पिकनिक में न जा सकने के बावजूद **मां** अन्य छात्र-छात्राओं के साथ श्री निकेतन जा सकीं। इसी पत्र में **मां** ने लिखा:

'कल हम लोग श्री निकेतन, जो यहां से चार-पांच मील बाद है, गये। **हर्ष प्रभा** का भाई था, वह सिक्ख सरदार भी था-दो और लड़के थे, उनमें से एक का नाम **अनिल** था। एक छोटा लड़का भी था, नाम है **'गुलु'।** बाकी सब लड़कियां थी। बस छोटी थी इसलिये दो बार में हम लोग गये। बड़ा मजा रहा। खूब घूमे, इटैलियन फ्रेस्को पेंटिंग्स् देखीं, जूता बनता देखा, चमड़े का काम देखा, मशीनें देखीं, दरियां बनती देखीं, आसन बनते देखे। सब लड़कियों ने चीजें खरीदीं-मुझे भी खरीदनी पड़ी-मेरा सारा सामान **हर्ष प्रभा** के भाई ने ढोया।

जब फिर यहां आये तो मेरा और सरदार का बड़ा झगड़ा हुआ-जनाब ने हम तीनों का किराया खुद दिया और अपना भी। मैंने कहा ऐसा नहीं हो सकता। मैंने उसकी जेब में डाल दिया। उसने मेरे हाथ में थमा दिया और भागा। मैं पीछे-पीछे भागी। रास्ते भर बड़बड़ाती रही। पर बदमाश वह सारे वक्त हंसता रहा-बोला, ऐसा झगड़ा अगर हमेशा होता रहे तो क्या मजा आये। फिर हम लोग डाइनिंग हॉल में पहुंचे। वह हंसता रहा। मगर वैसे वह है बहुत ही अच्छा आदमी।'

छात्र-छात्राओं से इस तरह मेल-मुलाकात, हंसी ठिठोली के अलावा शांति निकेतन आने वाले अतिथियों से मिल पाने, बातचीत कर पाने का अवसर भी **मां** को मिला। अपने १२ फरवरी १९३८ के पत्र में वे **अज्ञेयजी** और उनकी **बहन** के शांति निकेतन आने का जिक्र कुछ अफसोस के साथ करती हैं। अफसोस इस बात का कि बहिन के अति उत्साह के चलते उन्हें **'अज्ञेय'** से खास बातचीत का मौका नहीं मिल पाया। पर साथ ही काफी शैतानी के साथ जोड़ती हैं कि फिर भी 'दृष्टि विपर्यय' खूब हो सका:

'एक बात उस खत में लिखना भूल गयी थी। यहां **श्री अज्ञेय** और उनकी **बहिन** आई थीं। बड़ा मजा रहा। उनकी बहिन मुझसे बड़ी इम्प्रेस्ड हुई थीं। कहने लगीं कि शांति निकेतन के कोने-कोने में कलाकार हैं-और आप भी उन्हीं कलाकारों में से एक हैं-मेरा दुर्भाग्य है जो मैं जल्दी जा रही हूं-नहीं तो आपके पास रहती और आपको और आपके भीतर के कलाकार को समझने की कोशिश करती। ' मैं दंग रह गयी मैंने सोचा मजाक कर रही हैं, चौंक कर देखा -मगर उस मुख पर विश्वास की आभा थी जिसमें गंभीरता के सिवाय कुछ नहीं था। मैंने खींसे निकाल दीं। सिर झुका कर बोली 'हिं: हिं: आपकी कृपा है नहीं तो मैं कुछ भी नहीं। और उन्होंने इसे मेरी सौजन्यता ही समझी। मुझे कलकत्ता जाने का निमंत्रण दे गयी हैं। कह गयी हैं कि उनका 'सबसे बड़ा सौभाग्य होगा यदि मैं उनके घर ठहरी।'

और अपने राम ने मन में कहा-बच्ची कुछ दिन रहतीं तो मालूम होता-सारी भावुकता रफू हो जाती।

मेरे गाने पर वह पागल हो गयी थीं। मेरा गद्य गीत पढ़ अपने पास धरे ले रही थीं, और पेंटिंगों पर मुग्ध थीं। पर पता नहीं क्यों मुझसे मांगा नहीं। शायद सोचा हो कि बहुत अधिक खर्च की हो। यदि मांगतीं तो शायद एक दे देती, यद्यपि वे मैंने अपने यहां की

मैगजीन जो हस्तलिखित होती है के लिए बनायी थीं।

वह मेरे पीछे पड़ गई थी कि मैं उसे अपनी कविता दिखाऊं, जो उसकी समझ में मैं अवश्य लिखती हूं- मगर दिखाती नहीं। कह रही थी कि 'आप कविता नहीं लिखतीं यह मैं मान ही नहीं सकती।'

उसके साथ इतनी लड़कियां थीं मगर वह किसी से नहीं बोल रही थी। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया था और कभी-कभी उत्तेजित हो दबा देती थी।

उसे इतना भी ध्यान नहीं था कि मुझे उसके भाई से भी बोलना है। और मैं वास्तव में बोलना चाहती भी थी।

इस तरह **अज्ञेय जी** की बहिन की मूर्खता से मैं उनसे भाव विपर्यय करने से वंचित रह गयी, यद्यपि दृष्टि विपर्यय खूब हुआ।'

इस शिकायत के बाद, फौरन **मां** उनका लगभग बचाव करते हुए कहती हैं:

'मगर इन बातों से उन्हें (बहिन को) सिली टाइप की मत समझ लेना। क्योंकि मेरी समझ में वे उस आयु को बिता चुकी थीं और एक जगह ब्लाइन्ड और डेफ को पढ़ाने की ट्रेनिंग ले रही थीं, और शायद बी.ए. पास थीं तथा किसी स्कूल की टीचर थीं।

उन्होंने मुझे कोई बड़ी भारी चीज समझा था। लड़कियां मुझे चिढ़ाती थीं-उन्हीं के लिए और इस तरह मुझे एक एडमायरर साहिबा मिलीं।'

मजेदार बात जो **मां** ने आगे जोड़ी है कि यह एडमायटर साहिबा कलकत्ते लौटते समय मां से उनका पता लेना, और अपना पता **मां** को देना भूल गयी। सो जाहिर है कि इस परिचय का अंत भी शांति निकेतन में ही हो गया।

मां की गतिविधियों में हिन्दी साहित्य सम्मेलिनी, गद्य-पद्य रचना का उल्लेख तो है, पर **हजारी प्रसाद जी द्विवेदी** से कुछ सीखने, उनकी कक्षाओं में उपस्थित होने का उल्लेख नहीं है। न ही हिन्दी के किसी अन्य शिक्षक का।

२३ अगस्त १९३७ के अपने पत्र में **मां गुरुदेव** के साथ बिताये समय का वर्णन करती हैं:

'वर्षा मंगल के रिहर्सल के लिये हम लोग रोज **गुरुदेव** के यहां **'उत्तरायण'** जाते हैं। उनका गाना हम लोगों के लिये **'रेयर'** नहीं है। रोज वे गाते हैं, हंसते हैं, कभी नाराज होते हैं, कभी आंखें बंद करके हाथों से इधर-उधर कुछ शून्य में बनाते हैं। सामने गुरुदेव, हमारे पीछे बड़ी भारी खिड़कियां और खुला दरवाजा होता है। उसमें से कभी चांद झांकता है, कभी रिमझिम बूंदें गिरती हैं, और हम लोग बैठे गाते रहते हैं।

लोग **गुरुदेव** के दर्शन को तरसते हैं और एक हम हैं जो रोज दो घंटे उन्हीं के पास डटे रहते हैं। कभी मान-मनौव्वल भी करवाते हैं-चुप बैठ जाते हैं, गाते नहीं। बेचारे **गुरुदेव** समझते हैं कि गला खराब है, या तबियत खराब है। पूछते ही रह जाते हैं कि क्या हुआ और हम गुरु-घंटाल जवाब नहीं देते।

दीदी, हम लोगों की जन्म-जन्म की साधना है, तपस्या है, जो हम लोग ऐसे सुअवसर से लाभ उठा रहे हैं। आज दादा, जीजा और दीदी के लिए मेरा रोम-रोम आशीर्वाद दे रहा है- जिन्होंने इतने सारे ऑब्जेकेशन्स् के होते हुए भी मुझे यहां भेज दिया। कहां हैं नाना ? अगर कहीं वे एक बार आकर हम लोगों को देख लें- एक बार आकर यहां के वास्तविक वातावरण को जो सच में पवित्र है-देख लें, तो वे कभी न कहें कि हम लोगों को यहां नहीं भेजना चाहिए।

शहरों के वातावरण से जनित अशुद्धता, हृदय की संकीर्णता मिटती जा रही है। दीदी, वास्तव में मैं पूर्णरूपेण पवित्र अपने को पा रही हूं। मुझ में एक अपराधी-सी भावना थी वह चली गयी है-मैं पहिली सी हूं।

(कभी-कभी) धुंधली छाया की तरह हृदय पटल पर कुछ घूम जाता है-तब उदास हो जाती हूं। पर फिर ठीक हो जाती हूं। मैं खुश हूं, मुझ में संतोष की भावना है।'

इस पत्र को पढ़ने से पहले मुझे पता ही नहीं था कि शांति निकेतन जाने के विषय में मां के नानाजी ने ही आपत्ति की थी। और उनके पिता, हमारे नाना, **प्रोफेसर लालजी** और उनकी बड़ी दीदी, **श्रीमती सावित्री भारतीया** व **जीजा** ने इन आपत्तियों को दर-किनार किया था। यह संदर्भ साफ करता है कि जब मेरी छोटी बहन **अपूर्वा** ने एफटीआईआई में फिल्मों का अध्ययन करने पुणे जाने का, संकल्प किया तो मां ने, पिता, **प्रतापराय याज्ञिक** सहित सभी परिवार जनों के विरोध का डटकर सामना क्यों किया होगा।

२३ नवम्बर, १९३९ को लिखे पत्र में **मां** एक फ्रेंच महिला सुपरवाइजर तथा बाद में **गुरुदेव** का फिर से उल्लेख करती हैं। **गुरुदेव** के इस उल्लेख में वह श्रद्धा व आनन्द भक्ति भाव नदारद है, जो हमें शांति निकेतन के बारे में बताते समय उनके वर्णनों में होता था,या उनके ही उपरोक्त पत्र में है। इस उल्लेख में किशोरवय की स्वाभाविक अपरिपक्वता और हेठी झलकती है जो उनके बाकी 'पाका-पाका' वक्तव्यों से भिन्न है। खैर, इस खत में वे लिखती हैं:

'हम लोगों की सुपरवाइजर एक फ्रेंच लेडी हैं-वह मुझे खूब प्यार करती है। कहती है कि मुझे सब लड़कियां अच्छी लगती हैं, मगर तुम्हें देखकर जो खुशी होती है वह किसी और को देख कर नहीं होती। खूब तुतला कर बोलती है, कभी-कभी तो समझना मुश्किल हो जाता है। कल वह बनारस गयी हैं। ५-६ दिन में लौटेंगी। बड़ी अच्छी हैं।'

इसके बाद **मां गुरुदेव** से मुलाकात का वर्णन करती हैं, जो शायद घर लौटने के बाद हुई होगी :

'दो तीन दिन हुए **गुरुदेव** के पास गयी थी। बोले कि 'मैंने तो सुना है तुम्हारी शादी होने वाली है इसीलिए तुम चली गयी थीं-क्या शादी हो गयी ?' मैं खूब हंसी, वे भी खूब हंसे बोले, 'सब जा-जा कर फिर यहीं लौट आते हैं।' मैंने पूछा-'आपसे किसने कहा कि मेरी शादी होने वाली है ?' तो कहते हैं-'यहां यही खबर थी।' बाद में पता लगा कि उन्होंने **इन्दु दी** के लिए भी यही बात कही थी। दिमाग कुछ खराब हो गया है शायद।'

किशोरावस्था की झक, तरंग, या जो कहना चाहें उस विचित्र मनोभाव को मां १२ फरवरी, १९३८ को लिखे एक पत्र में अपने बंगाली संगीत के मास्टर मोशाय **शांति देव घोष** के संदर्भ में भी प्रकट करती हैं:

'एक बात बताऊं ? न जाने क्यों **शांतिदा** से मैं नाराज हो गयी हूं। मैं अपने से बहुत पूछती हूं क्यों ? तो इसका उत्तर नहीं मिलता। बस इतना ही जानती हूं कि उनसे बहुत ज्यादा नाराज हूं। आज उनकी क्लास में नहीं गयी।

खिड़की से गुजरे तो मुंह मोड़ लिया। नीचे बेचारे पूछने आये तो कहलवा दिया तबियत नासाज है । बेचारे अपना-सा मुंह लेकर टापते चले गये। कह गये कि रिहर्सल जल्दी होगा-साढ़े पांच बजे आ जाना। और मैं भभक पड़ी-'यह हुक्म हुं: मैं मानती हूं ? और जल्दी जाने की कौन कहे मैं गयी भी नहीं एकदम।'

अपने बंगाली संगीत के शिक्षक से यह नाराजगी अकारण थी जैसा वर्णन से लगता है, या सकारण जिसको वे बताना न चाहती हों, यह तो साफ नहीं होता। पर यह खत जिस समय लिखा गया था उस समय **मां** अपनी बहनों और भाइयों, अपने पिता अपने परिवार की याद से बेहद त्रस्त रही होंगी। क्योंकि एक तिथि रहित एक पत्र में वे उन्हें शांति निकेतन कितना पसन्द है यह अपनी बहन **मित्थल** को बताती हैं:

'वास्तव में मेरी किसी जन्म की साधना इस जन्म में सफल हो रही है। इससे अधिक और मैं क्या लिख सकती हूं।

मैं पारसाल भी यहां आऊंगी-यहां आकर किसी भी दिन मैंने सोचा कि मैं यहां क्यों आ गयी ...। पछतावा मुझे कभी नहीं हुआ।'

शांति निकेतन से लिखे **मां** के पत्रों में पहला १४ जुलाई, १९३७ का और आखिरी २३ नवम्बर, १९३९ का है इस आधार पर तकरीबन ढाई बरस **मां** ने वहां निश्चित रूप से गुजारे थे। वहां से किसी स्तर की परीक्षा पास की या नहीं यह भी **मां** से नहीं पूछा कभी। पर शांति निकेतन और **गुरुदेव** उनके जीवन में अंदर तक रच-बस गये थे।

कलकत्ता के बालीगंज इलाके में १ नम्बर तिलक रोड के निचले तल्ले में मां-पापा ने अपना बाल मंदिर खोला था। नाम था **'बाल शिक्षा मंदिर।'** इसके बड़े हॉल में कुछ श्वेत-श्याम छायाचित्र काले फ्रेम में मंढे, बच्चों को दिखें उस ऊंचाई पर टंगे थे। इनमें उनके गुरुओं-**मदाम मॉन्तेसोरी**, उनके पुत्र **मारियो मॉन्तेसोरी**, **गिजुभाई** के साथ एक **गुरुदेव** का भी था। कक्षा तीन तक के इस बाल मंदिर में बच्चे हिन्दी, बंगाली, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी कई भाषाओं के गीत-कविताएं गाते थे , इनमें रवीन्द्र संगीत भी था। शांति निकेतन के सुंदर - सरस-मधुर वातावरण का एक नन्हा संस्करण **मां** ने बाल शिक्षा मंदिर के सभी छात्र-छात्राओं को और अपनी तीनों बेटियों को भी उपलब्ध करवाया था। ❑

बी-८६, बजाज नगर, जयपुर
मो. नं. ९९२८५५००९४

किससे डरते हो

❑

कुसुम वीर

किससे डरते हो
लोगों से, अपनों से, बेगानों से
या फिर
खुद अपने आप से
जो भीतर बैठा
हर पल कचोट रहा है, भेद रहा है
तुम्हारी कायरता को।

मत डरो इस बात से,
कि लोग क्या कहेंगे,
उनसे-तुमसे, मुझसे या, सबसे

मत रोको अपने वजूद को
खड़ा होने दो उसे अपने कंधों पर
हटा दो उन बैसाखियों को
अपाहिज बना दिया है
जिसने तुम्हारे अस्तित्व को

पहन लो वीरता का कवच
नोच डालो बनावटी आवरण
मिटा दो भय की सलवटें
लिख दो नया अध्याय तुम

पहचान दो निज नाम को
बचा लो अपने मान को
ललकारो तुम हर घात को
अपना लो शौर्य और शान को

बढ़े चलो
उस पर जहां
सम्मान का तिलक मिले
इस धरा पर हर कोई
ना भीत फिर तुमको कहे। ❑

१८८४, सेक्टर-३७,
नोयडा-२०१३०३

कुछ सपने, कुछ हकीकत

❑
सुदेश बत्रा

हर शिक्षक छात्रों को कुछ सिखाता भी है और उनसे कुछ सीखता भी है कक्षा दरअसल शिक्षक के लिए एक प्रयोगशाला है वह इस प्रयोगशाला में शिक्षा को सम्पन्न होते हुए देखता है और इसके साथ ही मन ही मन कुछ सपने बुनने लगता है । इन सपनों के साथ छात्रों का भविष्य भी जुड़ा होता है और अपना भविष्य भी । हर शिक्षक चाहता है कि उसके छात्र भी सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे और वह स्वयं भी अपनी ज्ञान साधना में नित नये आयामों का अन्वेषण करता रहे । सुदेशजी को शिक्षा का लम्बा अनुभव है और साथ ही रचनात्मक लेखन का भी । वे कविता भी करती हैं और शिक्षा को चिन्तन अनुचिन्तन में भी मगन रहती हैं । उनके शैक्षिक अनुभवों पर आधारित एक लेख प्रस्तुत है । ❑ सं.

बी.ए. के प्रथम वर्ष में ही मैंने अपने सपने की भविष्यवाणी कर दी थी कि मैं जयपुर के महारानी कॉलेज में लेक्चरर बनूंगी-हालांकि तब न जयपुर देखा था, न महारानी कॉलेज परन्तु हालातों ने इतनी करवटें ली कि सपना जैसे उनके बीच पिसता ही रहा, मगर मरा नहीं। आखिर बरसों बाद मैंने राजस्थान यूनिवर्सिटी की खिड़की खोल ही ली।

मैंने अध्यापन की कोई ट्रेनिंग नहीं ली थी। बस एक विश्वास था कि आज कक्षा में, मैं मेज के इस पार हूं और सारे विद्यार्थियों के चेहरे पढ़ सकती हूं, यह भी कि मैं इन सब से अधिक जानती हूं, अत: ये मुझे 'हूट' नहीं कर सकते। मेरा मानना था कि कक्षा में केवल 'रीडिंग' नहीं चाहिए, बल्कि उस विषय से सम्बन्धित कुछ प्रश्न खड़े करने हैं, जिनके आधार पर बात में से बात निकलेगी।

मैंने यह महसूस किया है कि अध्यापक को स्वयं कक्षा का एक हिस्सा बनना पड़ता है, अत: उसकी भाषा की सम्प्रेषणीयता, सरसता, तार्किकता और आरोह-अवरोह युक्त गंभीर ध्वनि वातावरण बनाने में बहुत कारगर होती है। यदि अध्यापक की अवधारणाएं स्पष्ट नहीं हैं, यदि उसका अध्ययन और संदर्भ विस्तृत और बहुआयामी नहीं है, यदि उसका तालमेल कक्षा में निष्पक्ष नहीं है तो उसे विद्यार्थियों का 'रेसपान्स' नहीं मिल सकता। अध्यापक उनके लिए एक 'रोल मॉडल' होता है, उसकी व्यक्तिगत समस्याएं उसकी छवि को खंडित कर सकती हैं। उसकी सादगी और गम्भीरता विद्यार्थियों में एक निकटता और विश्वास पैदा करती है, साथ ही कक्षा में समय पर नियमित उपस्थिति विद्यार्थियों को भी अनुशासित रखती है।

कई खतरे भी हैं, अत्यधिक पांडित्य अथवा अहं का प्रदर्शन, जटिल वाक्य

विन्यास, दुरुह भाषा-शैली अथवा व्यक्तिगत अनुभवों का बाहुल्य भी वितृज्न्य का कारण बन सकते हैं। अध्यापक तो सावन के बादलों जैसा होता है, वह बरसता है सूखी धरती को उर्वर बनाने के लिए। यह अलग बात है कि धरती का कोई टुकड़ा पथरीला भी निकल आता है। पाठ्यक्रम को समय-प्रबन्धन में बांधना भी आवश्यक है, न तो 'शॉर्टकट' और न शिथिल आधा-अधूरा। कुछ समय विद्यार्थियों की कठिनाइयों और जिज्ञासाओं के लिए भी, जिनका समाधान अध्यापक को धैर्यपूर्वक करना ही चाहिए।

हमारे देश में गुरु शिष्य परम्परा एक अनमोल मूल्य की तरह रही है। शिष्य अपने गुरु से कुछ ग्रहण करे, इसके लिए गुरु को ही वह साधना करनी होगी। आज जिस तरह की व्यावसायिकता और आत्म-केन्द्रित स्थिति में वृद्धि हो रही है, जिस तरह से व्यवस्थागत दबाव बढ़ रहे हैं और जिस तरह से नौजवानों में भविष्य की चिन्ताएं और गलाकाट प्रतिस्पर्धाओं की कुंठाएं बढ़ रही हैं, उन सबको देखकर समस्याओं का सरलीकरण नहीं किया जा सकता, न ही कोई आदर्शीकृत सपना देखा, दिखाया जा सकता है। फिर भी शिक्षा चाहे साहित्य की हो या विज्ञान की, मानवीय सरोकार उसका एक अभिन्न अंग तो है ही। पारम्परिक मूल्यों और नैतिकता को भी काल सापेक्ष सच्चाई के साथ स्वीकार करना आवश्यक है।

समय, ऊर्जा और धन का संतुलित उपयोग ही नई पीढ़ी को सही दिशा-निर्देश दे सकता है।

शायद शास्त्र में ही कहीं लिखा है- शब्दों की गूंज होती है। यह निर्भर करता है कि कोई व्यक्ति उसका क्या अर्थ ग्रहण करता है। मैं साहित्य की विद्यार्थी रही हूं और साहित्य का ही अध्ययन अध्यापन किया है। साहित्य के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि रचनाकार का काल खंड,

साहित्य का अध्ययन मुख्यतः इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन आदि के तन्तुओं से बुना जाता है, जिसमें कल्पनाशीलता का वाग्वैदग्ध्य की रम्यता होती है। फिर चाहे सूर, तुलसी, कबीर और मीरा हो या प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, महादेवी, दिनकर आदि हों

उसका विचार-दर्शन, तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियां, उनकी पृष्ठभूमि और विरोधाभासों के साथ विषय को प्रस्तुत किया जाए। यह भी आवश्यक है कि रचनाकार से संबंधित जो शोध हुए हैं, अथवा अन्य विद्वानों ने जो विचार प्रस्तुत किए हैं, उनके हवाले भी दिए जाएं तथा ५०-६० वर्ष पहले किए गए शोध-कार्यों में आज के संदर्भ में क्या नया जोड़ा घटाया जा सकता है। इस सब तैयारी के लिए मुझे दो काम अत्यावश्यक प्रतीत हुए-एक तो लायब्रेरी से निरन्तर सम्पर्क, नई-पुरानी पुस्तकों का अध्ययन और अन्य विद्वानों के व्याख्यान सुनकर उनकी विशेषताओं को पहचानना।

साहित्य का अध्ययन मुख्यतः इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन आदि के तन्तुओं से बुना जाता है, जिसमें कल्पनाशीलता का वाग्वैदग्ध्य की रम्यता होती है। फिर चाहे सूर, तुलसी, कबीर और मीरा हो या प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, महादेवी, दिनकर आदि हों। मुझे याद है- प्रेमचन्द का 'गोदान' अलग-अलग प्रश्नों के जाल से उलझता, सुलझता विद्यार्थियों के लिए अति परिचित हो गया था। दूरदर्शन पर जब 'गोदान' पर टेली फिल्म दिखाई गई तो कई विद्यार्थियों ने मुझे आकर कहा- आपने तो बताया था कि होरी बहुत गरीब और दुबला पतला था किन्तु टी.वी. पर तो बहुत हट्टा-कट्टा होरी दिखाया और उसके घर के दरवाजे पर परदा भी लगा हुआ था।

अध्यापन की कोई एक शैली हो ही नहीं सकती और न ही हर विषय को एक रेखीय बनाया जा सकता है। विद्यार्थियों के उत्तरों, जिज्ञासाओं में मुझे उनका किताबी ज्ञान, संस्कार, परिवेश और बौद्धिक तार्किकता का आभास मिल जाता था। यहां तक कि ग्रामीण और नगरीय परिवेश के अंतर और अनुभव का भी प्रस्फुटन हो जाता था।

आज उच्च शिक्षा की जो स्थिति है, उससे चिंतित होना स्वाभाविक है। उच्च शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक विद्यार्थी का सपना होता है और कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में नियुक्ति पाना भी अनिवार्य अर्हता प्राप्त प्रत्येक युवा का सुन्दर सपना किन्तु लम्बी चौड़ी जद्दोजहद, परीक्षाओं और प्रतियोगिताओं और इन संस्थाओं की संख्या में बढ़ोतरी के बावजूद यह सपना खजूर के पेड़ पर चढ़ने जैसा है। एम.ए.पीएच.डी., नैट, स्लैट के बाद भी या तो रिक्तियां निकलती ही नहीं और यदि निकल भी जाएं तो उनकी संख्या अभ्यर्थियों की संख्या के मुकाबले ऊंट के मुंह में जीरे के समान होती है। फिर शुरू होती है सफल होने की दौड़-धूप, कोचिंग-सेन्टर्स के चक्कर। बेहद तनाव भरी इस प्रक्रिया में, परिणामों की घोषणा में ही महीनों निकल जाते हैं। सवाल यह उठता है कि व्याख्याताओं की कमी के बावजूद सफल अभ्यर्थी बहुत कम होते हैं। विशेषज्ञों की राय में योग्य प्रतिभागी मिलते ही नहीं। पास-बुक्स से पढ़ने वाले उम्मीदवारों का सामान्य ज्ञान बहुत कमजोर होता है। डिग्रियां प्राप्त करते-करते ये उम्मीदवार बीच में ही बी.एड. की डिग्री ले लेते हैं और फिर प्रथम,

द्वितीय, तृतीय ग्रेड शिक्षक की नियुक्ति के लिए दूरदराज के गांवों में स्थापित होकर कॉलेज के सपने संजोये रखते हैं। परिवार, विवाह, रोजगार, आवागमन और स्कूली परिवेश के दबावों तले कॉलेज की शिक्षा का स्तर और भाषा दोनों की ही जमीन दरकने लगती है। असमय पकने वाले बालों की सफेदी और आंखों के नीचे पड़ने वाली काली झाइयां -एम.ए., नैट, पीएच.डी. की डिग्रियों को मुंह चिढ़ाने लगती हैं। इन सबसे गुजरकर जब कोई भाग्यशाली कॉलेज की नौकरी प्राप्त कर ही लेता है तो दूरस्थ गांवों की पोस्टिंग, ग्रामीण परिवेश से समायोजन, घर से रोज का ४-६ घंटे का आवागमन, विश्राम का अभाव, उन्हें विद्यार्थियों, पुस्तकों से विमुख करके सिर्फ माह के अंत में वेतन पर ही निगाह केन्द्रित करने को विवश कर देता है। उनसे उम्मीदें तो बहुत होती हैं किन्तु कॉलेजों में पीने के साफ पानी और मूलभूत आवश्यकताओं के अभावों में सारे सपने दम तोड़ने लगते हैं।

विश्वविद्यालयों की बड़ी संख्या के बावजूद उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा की अवधारणा यहां भी किताबी ही है। शिक्षकों का अभाव तो है ही किन्तु शिक्षा और अध्यापन के प्रति कोई रुझान या वातावरण नहीं बन पाता। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों का तालमेल और प्रतिबद्धता गड़बड़ा गई है। अनुशासन और नियमितता का कोई बंधन नहीं। फलत: अनुत्पादक गतिविधियों की राजनीति पलने लगती है। बड़े-बड़े सम्पर्क सूत्र बनने लगते हैं। युवा पीढ़ी की दिशाहीनता और शिक्षकों की आत्मकेन्द्रिकता उन सारे मूल्यों और आदर्शों को भुला बैठती है, जिन्हें यदा-कदा मंचों पर दोहरा लिया जाता है। सांस्कृतिक समारोहों के नाम पर बेशुमार फिजूलखर्ची, किसी फिल्मी-सेलिब्रिटी के ग्लैमर और हुल्लड़बाजी के ही दृश्य दिखाई देते हैं। शिक्षा की गुणवत्ता, संकट की चिन्ता बौद्धिकों को है, नीति नियामकों को भी है। आज का युग कठिन प्रतियोगिताओं का भी है। युवाओं पर मानसिक दबाव भी है किन्तु मानवीय संवेदनाओं और नैतिकता के संरक्षण की गुंजाइश उच्च शिक्षा से गायब होती जा रही है। आपाधापी के इस युग में पूंजी के खेल में वास्तविक स्थितियों को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। समय, ऊर्जा और पूंजी का दुरुपयोग रोकने के लिए रेत पर महल बनाने के प्रयत्न रोकने होंगे। ❑

बी-१०७/१०४, कदम्ब अपार्टमेन्टस,
उदय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४

खेलते बच्चे

❑

जगमोहन चोपता

स्कूल के आंगन में
खेलते बच्चों के चेहरों पर
रौनक है भरपूर
महक रहे हैं वे
खिले फूलों की तरह

पर कक्षा में आते ही
खत्म हो जाती है
बच्चों के चेहरों की मुस्कान
घर कर जाता है बाल मन में
अदृश्य डर

आंगन में खेलते बच्चे
और कक्षा में सहमे बच्चों के
अन्तर को पाटना होगा
प्यार, अपनत्व और खेल से

वरना यूं ही अलसाये से
बहुत ही कीमती समय काटते रहेंगे बच्चे। ❑

अजीम प्रेमजी इंस्टीट्यूट फॉर लर्निंग एंड डवलपमेंट,
भटवाड़ी रोड, उत्तरकाशी, उत्तराखंड
फोन-०९४५६५९१२१८

पाठ की संवेदना

❑
श्याम विमल

भाई श्याम विमल पुरातन पाठ्य पुस्तकों की याद करते हुए नये प्रश्न खड़े कर रहे हैं। वे उन कहानियों का भी उल्लेख कर रहे हैं जो शिक्षा को बोझ बनने से बचाती थीं और भारी भरकम उपदेश दिये बिना बालकों के दिल में एक संदेश उकेर देती थीं। प्रासंगिक तो आज भी हैं पंचतंत्र और हितोपदेश। उनका लालित्य और उनकी रोचकता आज भी उतनी ही मनोरंजक है। प्रस्तुत लेख हमने जनसत्ता से लिया है। विश्वास है शिक्षा जगत से जुड़े पाठक इसके सारगर्भित संदेश का स्वागत करेंगे। ❑ सं.

इसे अतीतमोह नहीं, अतीत चिंतन मान कर पढ़ा-सोचा जाए कि इस बंदे को सत्तर-पिचहत्तर साल पहले प्राथमिक पाठशाला में अपनी हिन्दी-संस्कृत की पाठ्य पुस्तकों में जो पढ़ने को मिलता था, वही या वैसा कुछ आजाद होने के बाद हमारे देश में क्यों नहीं पढ़ाया जाता है। भौतिक विकास की दुहाई देकर नई पीढ़ी का पूरा जीवन ही धन संचय के प्रलोभन में झोंक दिया जा रहा हो, तो हम और हमारी संतानें स्वाभाविक रूप से बौद्धिक-मानसिक और चारित्रिक विकास के आदर्श रूप से दूर छिटक जाएंगी। अपने जीवन के बयासी फाल्गुन पाठ आज भी याद है, जिन्होंने बाल्यकाल को संवारा, बनाया, शिक्षित किया और काल्पनिक से जोड़ा, सपने दिए। उस वांछित ज्ञान का आज की बाल शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्थान कहां है ?

मुझे वे पाठ याद है। यहां तक कि उन पाठों के काले-काले अक्षरों की अपेक्षित मोटी छपाई भी याद है। पाठों में छोटी-छोटी कथाएं और उनके बीच छपे रेखाचित्र भी प्रत्यक्ष हो आते हैं। जैसे-'भोला ब्राह्मण' कथा में दान-दक्षिणा में प्राप्त एक बछिया के गले की रस्सी हाथ में थाम अपने गांव-घर की तरफ लौट रहे भोले ब्राह्मण की उस बछिया हथियाने के इरादे से तीन ठगों ने बारी-बारी से झूठ और मक्कारी से यह अहसास कराया कि ब्राह्मण होकर भी इस कुत्ते को क्यों ले रहे हो, यह ब्राह्मणोचित कर्म नहीं। यह झूठ भोले ब्राह्मण को भ्रमित और शर्मिंदा करने के लिए काफी था। अपनी कथित उच्च जातीयता बचाने की खातिर उस ब्राह्मण ने कुत्ता समझ कर बछिया छोड़ दी। तीनों ठग उसे ले उड़े।

कथाएं और भी याद हैं। 'भेड़िया आया, बचाओ' की हर बार दुहाई देकर एक ग्रामीण गड़रिए ने बतौर परीक्षण कई बार अपने गांववासियों को छकाया। आखिर एक दिन सच में भेड़िया आ गया और वह झूठा गड़रिया उसका शिकार बन गया। ऐसी और भी शिक्षाप्रद कथाएं याद आ रही हैं। दो मित्रों में सच्ची मित्रता की परीक्षा लेने वाली कथा में एक भालू का जंगल में आ जाना और एक मित्र का पेड़ पर चढ़ जाने से मतलबी और अविश्वसनीय रूप स्पष्ट होना। एक और कथा तालाब किनारे रहने वाले दो हंसों और एक कछुए की मित्रता के दुखद परिणाम वाली भी याद है। अपने परों में मोर पंख खोंस कर खुद को मोर जैसा सुंदर साबित करने वाले कौवे की कथा धूर्तता जतलाती है। कम पानी वाले जग में कंकड़ डाल कर उतराए पानी से प्यास बुझाने वाले एक समझदार कौए की कथा। 'अली बाबा चालीस चोर' वाली तीन पाठों की लंबी कहानी भी याद है। 'चारि चारि उंगली की लोहे की पटरी पै, चारि चारि उंगली की

पहिया प्रबल है' वाली बाल कविता पढ़ते हुए रेलगाड़ी के बिंब भूलते नहीं।

इसी के साथ बालकों में अच्छे संस्कार भरने और कर्तव्य भावना उभारने वाली आदर्श कथाएं भी पढ़ने में आईं। उनमें से एक अतिथि सत्कार पर आधारित राजा रंतिदेव की त्यागमयी दिल को छू लेने वाली कहानी भुलाई नहीं जा सकती। इन आदर्श पाठ पुस्तिकाओं के अलावा गणित पुस्तक के सवाल भी तत्कालीन समाज की अर्थ व्यवस्था और सादगी को साबित करते लगते हैं। रुपया, आना, पाई वाली पुरानी 'करेंसी' और पुराने छंटाक संस्मरण वाले तोल में एक सवाल था-'अगर गेहूं के आटे का भाव तीन रुपए बारह आने मन हो और प्रति व्यक्ति की एक दिन की खुराक छह छटांक हो तो उन्यासी व्यक्तियों के लिए एक सप्ताह की खुराक पर कितने रुपयों का आटा लगेगा?'

जमाना बदला तो सवाल भी बदल गए। लेकिन अनाज नहीं बदला, प्रवृत्ति ही बदल गई। विद्यार्थियों की नई पीढ़ी के गणित में एक सवाल यों है- 'गोदाम में दूसरे गोदाम से दो गुना अनाज है। अगर पहले गोदाम से साढ़े सात सौ मीट्रिक टन और दूसरे गोदाम में साढ़े तीन सौ मीट्रिक टन अनाज निकाला जाए तो दोनों गोदामों में अनाज बराबर रह जाता है। बताइए, प्रत्येक गोदाम में कितना अनाज है ?' आज अनाज गोदामों की यह हालत और अनाज व्यापारियों की जमाखोर प्रवृत्ति मीडिया जगत में इन खबरों से जाहिर होती है कि गोदामों में अनाज रखने की जगह नहीं, बाहर सड़ता रहता है। देश का गरीब तबका भूखे पेट सोता है तो इधर किसान आत्महत्या करते हैं। उधर सुप्रीम कोर्ट को केन्द्र सरकार से सवाल करने के लिए स्वत: संज्ञान लेना पड़ता है।

आजादी की वर्तमान उम्र और उसमें सोलह साल जोड़ कर अपनी जिंदगी नाम की गणित पुस्तक से या सेंसेक्स की आंकड़ेबाजी से हट कर मैं यह जानना चाहता हूं कि ऐसे लोकतंत्र में इंसान की हैसियत वर्तमान समय में कहां है, जिससे संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन से जीने का बोध, यानी 'हितोपदेश' या 'पंचतंत्र' प्राप्त होता हो! ❑

विमल वाटिका
बी-९६, सेक्टर-२६
नोएडा

कृपया अनौपचारिका से दोस्ती करें

❑

मैत्री समुदाय

यह समुदाय अनौपचारिका के मित्रों का समुदाय है। ऐसे मित्रों का जो इसे स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। उनका जो इसे पांवों पर खड़ा करना चाहते हैं। उनका जो इस पत्रिका को सामाजिक एवं सामुदायिक सहयोग से संपन्न होने वाला सफल आयोजन बनाना चाहते हैं। ऐसे प्रेमी मित्रों का एक विशद समुदाय बनाना हमारा सपना है। क्या आप इस मैत्री परिवार के सदस्य हैं ?
यदि नहीं हैं तो कृपया शीघ्र बनिए। हमारे सपने को साकार करने में सहयोग दीजिए।
चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट से रुपये एक हजार पांच सौ अथवा
उससे अधिक श्रद्धानुसार शीघ्र भिजवाइए। ड्राफ्ट या चैक राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर अथवा अंग्रेजी में Rajasthan Adult Education Association के नाम हो।

हमारा पता है -

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४

हम अनौपचारिका के हर पाठक एवं हर सहयोगी संस्था से अपील करते हैं
कि मैत्री-समुदाय की सदस्यता शीघ्र ग्रहण करें। सादर। ❑ संपादक

स्कूल जाने के लिए

❑
श्रीमती प्रेम जैन
❑

सुबह सवेरे
उठते हैं बालक
एक तनाव के साथ –
जिसमें शामिल है
दिवस भर का कुहासा,
अलसाये मौसम में
स्कूल जाने का दर्द !
जब घर के लोग
ले रहे जायका
बेड–टी का
या डूबे हैं
अखबारी सुर्खियों में
उनके भावों की पुस्तक
पढ़ते हैं बालक
तैयार होते हुए
स्कूल जाने के लिए।
ढोते हैं, आधुनिक सभ्यता को
अपने मासूम कंधों पर
पूरे तामझामों से सुसज्जित
सारे अलंकरणों पर डालते हुए दृष्टि
उपेक्षित सी।
लंच बाक्स में बंद
आधुनिक सभ्यता का अमृत
'फास्ट फूड'
जो सूर्योदय से
स्कूल से लौटने तक के सफर के लिए
काफी या नाकाफी है –
यही रोजनामचा है बच्चों का
रविवार
चॉकलेट की तरह आता है
चारों ओर से उपेक्षित
बच्चों का मसीहा
'टेलिविजन'
सीरियलों के इन्द्रजाल में
उलझाये
रखता है।
जिसके साये में पले
दुनिया की खबरों तले
अपनों से बेखबर
सपाट जिन्दगी,
जीने को विवश

खाते हैं
कच्चा पक्का
स्वाद बेस्वाद खाना।
खरगोश से कोमल निरीह बच्चे
अकेलेपन की अंगुली थामे
सूनेपन को पाटते हैं
भय और आतंक से
जो पाटा जाता था कभी
दादी-नानी की कहानियों से।
उन्हें
कच्ची पक्की नींद में
डराते हैं
स्कूली नियम कायदे
यांत्रिकता में कैद
नीरस जिन्दगी के
लम्बे बौने भूत
जो टी.वी. सीरियल
परोसते रात-दिन।
इन सारी नागफनियों के बीच
खिलता है एक गुलाब....
स्वप्न में
नाजुक अंगुलियां
उड़ाती पतंगें
ऊंची और ऊंची ...
तभी टूट जाती है डोर
बज उठता है 'अलार्म'
पतंग उड़ाते, दौड़ते बच्चों को
दहशत भरे स्वर पर
छोड़ना पड़ता है बिस्तर
अनचाहे ही
स्कूल जाने के लिए। ❑

१ ध, १० दादाबाड़ी,
कोटा-३२४००९
मो.९८८७२१७६१४

डॉ. फतेहसिंह

रेणुका राठौड़

गुरु पूर्णिमा का दिन स्वयं को अतीत से जोड़ने का दिन है। प्रत्येक नगर इस दिन उत्सव के उल्लास में नहाता है। इस बार जयपुर नगरी में उत्सवों के आगार में एक छोटा सा कार्यक्रम हुआ जिसने कई आंखों को नम और कंठों को गद्गद कर दिया। यह दिन वेद-मर्मज्ञ डॉ. फतेहसिंह जी का जन्म दिन है और यह वर्ष उनका जन्म-शताब्दी वर्ष है। इस जलसे में अपने गुरु को भावांजलि प्रदान करने उनके शिष्यगण अजमेर, दिल्ली, होशियारपुर, हरिद्वार आदि अनेक स्थानों से पहुंचे।

कई बरस पहले, एक भव्य वैदिक गोष्ठी में राजस्थान पत्रिका के संस्थापक स्वर्गीय कर्पूरचन्द्रजी कुलिश ने अपनी जोशीली आवाज में डॉ. फतेहसिंह जी के लिये एक विशेषण का प्रयोग किया था - 'वेदविद्या के भीष्म पितामह।' अपनी धवल पोशाक-चूड़ीदार पायजामा और उस पर गांधी टोपी लगाये डॉ. फतेहसिंह राजस्थान के कोटा, श्रीगंगानगर, ब्यावर तथा कालाडेरा के महाविद्यालयों में प्रिंसीपल भी रहे। उन्हें वक्ताओं ने उनकी गम्भीर गूंजती आवाज, समय की पाबन्दी, अनुशासनप्रियता, हृदय की सरलता, सर्वजन सुलभता-इतने गुणों के लिए याद किया कि एक बार फिर सभी के चित्त पर उनकी वह छवि फिर से छा गयी।

वह एक अनोखा कार्यक्रम था। कोई मुख्य अथवा विशिष्ट अतिथि नहीं। सेवा निवृत्त प्राचार्य प्रोफेसर एस.सी. मिश्रा की अध्यक्षता में संपन्न इस कार्यक्रम में सभी आगन्तुक डॉ. फतेहसिंह जी के शिष्य, प्रशिष्य अथवा प्रशंसक थे और श्रद्धापूर्ण हृदयों से अपने गुरु का स्मरण कर रहे थे।

वे गुरु जो वेद-विद्या के आजीवन उपासक रहे, भारतीय संस्कृति के प्रखर और अधिकृत विद्वान थे, सिन्धु घाटी सभ्यता को वैदिक सभ्यता तथा द्रविड़ सभ्यता को वेदमूलक सिद्ध करने में जो अग्रणी बने, कविता जिनकी लेखनी से स्वत: प्रवाहित होती थी-राजस्थान संस्कृत अकादमी की अध्यक्ष डॉ. सुषमा सिंघवी इस प्रकार एक के बाद एक डॉ. फतेह सिंह जी की विशेषताओं को गिनाते हुए भाव-विह्वल हो उठीं और अपनी बात समेटते हुए बोलीं कि इतनी वैविध्यपूर्ण प्रतिभा के उपरान्त भी उनकी सबसे अधिक प्रभावित करने वाली

बात थी उनकी 'सरलता'। विद्वता का अंशमात्र अहंकार भी नहीं होना उन्हें सबसे अलग बनाता है।

हरिद्वार से समारोह में भाग लेने पहुंचीं डॉ. प्रतिभा शुक्ला ने कहा कि मैंने उन्हें आजीवन 'बाबा' ही कहा और वही माना भी और अब उनका पितामह स्वरूप ही मेरी सबसे अनमोल पूंजी है। वेदों को पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्वान तो बहुत हैं पर वेदों को जीने वाले लोग विरले ही होते हैं। प्राकृत भारती के मानद निदेशक ८७ वर्षीय महामहोपाध्याय विनय सागर जी अस्वस्थ होने के उपरान्त भी वहां उपस्थित रहकर अपने स्मित-मौन के साथ उस काल के भी साक्षी थे और इस सभा में भी श्रोता बने।

राजस्थान सरकार की पत्रिका सुजस के प्रधान सम्पादक, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी श्री श्यामसुन्दर बिस्सा भी इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। उन्होंने कहा कि जिस समाज में विद्वानों का सम्मान होता है वह प्रगति करता है किन्तु जब समाज में भ्रष्ट आचरण वालों को सम्मान और पहचान मिलने लगती है तो समाज की गति अधोमुखी हो जाती है।

देश के कई भागों से आये कुछ अन्य शिष्यों के बोलने के बाद बारी थी अजमेर से आये उनके प्रिय शिष्य डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली की। वे सन् १९५२ की याद कर कहने लगे कि जब मैं अपने गांव से रेलगाड़ी में बैठकर रवाना हुआ तो मेरी जेब में मात्र छः आने थे उसमें से तीन आने रेल के भाड़े में खर्च हो गये। बचे हुए तीन आने लेकर मैं कोटा रेलवे स्टेशन पहुंचा। मैं यह भी नहीं जानता था कि इस पूंजी से आगे की पढ़ाई कैसे करूंगा। इसी ऊहापोह में डूबा राजकीय महाविद्यालय पहुंचा। बिना किसी रोक-टोक के प्राचार्य कक्ष में जा पहुंचा। डॉ. फतेह सिंह जी तब कोटा महाविद्यालय के प्राचार्य थे। मैंने बिना किसी लाग-लपेट के उन्हें अपनी समस्या बताई। मैं स्वयं नहीं जानता कि कैसे इतनी सहजता से मेरा उस महाविद्यालय में प्रवेश हो गया? और रहा सवाल जीवन-यापन का तो डा.साहब के घर मुझे बुलाया गया। मेरे पहुंचते ही उन्होंने अपनी बड़ी बेटी को बुलाकर मेरी ओर संकेत करते हुए कहा कि आज से ये तुम्हारे मास्टर साहब हैं और तुम्हें पढ़ायेंगे। इस प्रकार मेरे स्वाभिमान को बरकरार रखते हुए मेरे गुजारे का भी पूरा बंदोबस्त उन्होंने कर दिया।

भाव-विभोर डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली एक के बाद एक हृदय द्रवित कर देने वाले संस्मरण सुनाते जा रहे थे और उस सभागार में बैठे सभी लोग कभी आंसू पोंछते तो कभी मुस्कराते हुए उस काल का भरपूर अनुभव कर रहे थे कि जब गुरु 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' के भाव को अपनाता हुआ अपने शिष्य को संवारता था।

पर अफसोस इस बात का है कि इस प्रकार के समाज को दिशा बताने वाले समारोह न तो खबरों का केन्द्र बनते हैं और न ही ऐसे अनुकरणीय आचार्यों के जीवन आज की जनता के लिए रुचिकर विषय हैं।

इस कार्यक्रम का आयोजन डॉ. फतेहसिंह के जीवन काल में अमरीका में गठित संस्था ग्लोबल सिनर्जी फाउण्डेशन की भारत-शाखा ग्लोबल सिनर्जी समिति के तत्वावधान में उनके शिष्यों द्वारा ही किया गया।❑

सागरमाथा, करणी विहार कॉलोनी, झोटवाड़ा, जयपुर

शिक्षकों एवं लेखकों से अपील

❑

{शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे हर नव-प्रयोग को हम सविस्तार अनौपचारिका में प्रकाशित करना चाहते हैं। शिक्षकों और शिक्षाकर्मियों से अनुरोध है कि वे अपने प्रयोगों अथवा नये प्रयासों के अनुभव लिखकर भिजवायें। हमें अच्छे लेखों व शिक्षा की नयी किताबों पर टिप्पणियों की भी प्रतीक्षा रहती है। पाठक अपनी रचनाएं भिजवाकर अनुगृहीत करें। रचना के साथ रचना संबंधी फोटो तथा स्वयं का फोटो भी अपने संक्षिप्त परिचय के साथ अवश्य भिजवायें। ❑ सं.

एक शिक्षक की कीमत

❑
कार्तिकेय मित्तल

चम्बल क्षेत्र डाकुओं की समस्याओं से देश भर में प्रसिद्ध है। आप किसी दूसरे शहर में चले जायें, और कहें कि मुरैना-चम्बल से आये हैं। तो लोग आपको बाहर का दरवाजा दिखला देंगे। यहां के डाकू अपने को 'बागी' कहते हैं। पिछले दिनों 'पानसिंह तोमर' फिल्म ने डाकू की समस्या को और भी उजागर कर दिया है। स्थानीय बोली में इसे पकड़ कहते हैं। आज भी सम्भ्रान्त परिवारों के बच्चों को अतिरिक्त सुरक्षा दी जाती है।

पर पिछले दिनों एक खबर ने सभी का ध्यान खींच लिया। एक 'मास्साब' पकड़ में आ गये। खैर, वैसे भी कोई शिक्षक घर या स्कूल या बाहर करता ही क्या है कि उसकी पकड़ से किसी को कोई चिन्ता हो। घरवाले भी सोचते हैं चलो, कुछ दिन घर में शांति रही। पर एक चौंकाने वाली बात और थी 'फिरौती' के रूप में एक करोड़ की मांग। मोबाइल पर राशि सुनने वाले भी अध्यापक ही थे। यूं आजकल जो राष्ट्रीय स्तर पर शोध हो रहे हैं वे बतलाते हैं कि कक्षा आठ तक पहुंचने पर भी बच्चा एलकेजी का गणित(या भाषा) नहीं जानता। शायद शिक्षक की भी यही स्थिति हो, तो लगा कि सुनने वाले ने कुछ 'जीरो' ज्यादा सुन लिये। पर जब अन्तत: मालूम हुआ कि फिरौती के रूप में वास्तव में एक करोड़ रुपये ही मांगे गये हैं तो 'थोड़ी खुशी-थोड़ा गम' हुआ। गम तो पकड़ का, पर खुशी इस बात की कि जिस देश में प्राइमरी स्कूल के शिक्षक किसी चपरासी से ज्यादा नहीं, उसकी कीमत एक करोड़ रुपये। आखिर सरकार ने न सही, डाकुओं ने तो एक शिक्षक का सही मूल्यांकन किया। जो गुरु बुद्धा, विष्णु, महेश है, जो गुरु साक्षात परमब्रह्म हैं, उसका मूल्य तो एक करोड़ भी कम है। कहा है गुरु गोविन्द में, गुरु पहले है।

पुलिस तो खैर सकते में थी कि शेर कब से घास खाने लगा। उसे और कोई नहीं मिला-आखिर एक मास्टर मिला। आज तो एक पटवारी भी कई करोड़ का मालिक होता है।

खैर, अध्यापक संघ ने तय किया है कि जब यह शिक्षक छूट कर आयेगा, इसके स्वागत में बड़ा उत्सव मनाया जायेगा और गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में मास्टर की कीमत दर्ज करने के लिए अर्जी दी जायेगी। ❑

एच-८८३, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
मुरैना-४७६००११

मिनिस्टर्स

हिज ~~मास्टर्स~~ वॉयस!
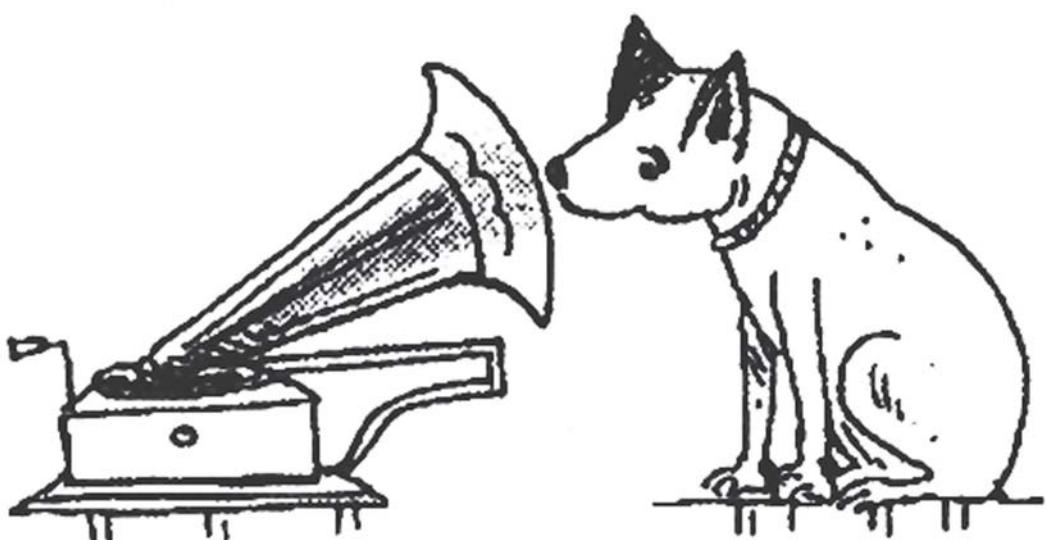
५ जुलाई, २०१२ जनसत्ता से साभार

शिक्षण का आनंद : जहां पीटने-पिटने की कोई गुंजाइश नहीं

संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक रमेश थानवी के लिए कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित

रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका | RNI 43602/77

कक्षा में बच्चे : कोई इनको भी पढ़े !

सितारों के बीच बैठा
ईश्वर
आदमी के आने की
बाट देख रहा है
कि वह आये
और उसके दीये जलाये

❑ रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१६ अगस्त, १९७३ को गुरुदेव ने यह संदेश एक छात्रा ब्रजेश कुमारी की ऑटोग्राफ बुक में लिखा।